IJAER/ Jan-Feb 2022/Volume-11/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

भारत के विभाजन के कारणों और इसके एकीकरण के लिए किए गए प्रयासों का ऐतिहासिक विश्लेषण

रिसर्च सुपरवाईजर
(डॉ. दिलावर नाबी भट)
इतिहास विभाग,
निम्स विश्वविद्यालय,
जयपुर

रिसर्च स्कॉलर
(मिनाक्षी रावत)
इतिहास विभाग,
निम्स विश्वविद्यालय,
जयपुर

सार

इस शोधपत्र में शोधकर्ता ने विभाजन और पलायन पर लेखन की ऐतिहासिक यात्रा का पता लगाने की कोशिश की है। विभिन्न साहित्य के विश्लेषण के बाद, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विभाजन और पलायन के मुद्दे पर लेखन के मुख्य रूप से तीन चरण हैं। सबसे पहले, विभाजन और पलायन की घटना के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारणों को खोजने पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जिसे लोकप्रिय रूप से उच्च राजनीति कहा जाता है। बाद में, विभाजन और पलायन के पीछे क्षेत्रीय और स्थानीय कारणों की खोज को शामिल करने पर ध्यान केंद्रित किया गया। इन दोनों चरणों में, पलायन को विभाजन के परिणामस्वरूप होने वाले सामान्यीकृत अनुभवों के रूप में समझाया गया है। वे भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन के परिणामस्वरूप पलायन करने वाले लोगों के वास्तविक अनुभवों को जगह नहीं देते हैं। शोध के क्षेत्र में इस कमी को नए इतिहास लेखन में खोजा गया, जो पलायन के प्रमुख प्रतिनिधित्व से आगे बढ़कर महिलाओं, निचली जातियों और अन्य लोगों सहित हाशिए के समूहों को आवाज़ देता है। वे 1947-1950 के लोकप्रिय समय सीमा से भी आगे बढ़ते हैं और बताते हैं कि विभाजन के वर्षों बाद भी पलायन होता रहा और इसकी यादें आज भी प्रवासियों की अगली पीढ़ियों के दिमाग में ताज़ा हैं।

मुख्य शब्द ;विभाजन, शरणार्थी, प्रवास, उच्च राजनीति, क्षेत्रीय राजनीति, नया इतिहास।

परिचय

अंग्रेजों ने भारत पर विजय प्राप्त की और इसे एक राजनीतिक एकता प्रदान की, जिसका आनंद इसके लंबे इतिहास में केवल कुछ समय के लिए ही लिया जा सका था। साम्राज्यवादी विस्तार पर आधारित इस राजनीतिक एकीकरण ने आधुनिक शिक्षा के प्रसार और परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों के विकास के साथ-साथ भारत में राजनीतिक परिवर्तन की गति को तेज कर दिया। फिर भी, जब 1947 में अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तो देश धार्मिक आधार पर भारत और पाकिस्तान में विभाजित हो गया। इसका श्रेय अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई फूट डालो और राज करो की नीति को दिया जाता है। गांधी सहित सभी भारतीय राष्ट्रवादियों का मानना था कि ब्रिटिश भारत के विखंडन के लिए ब्रिटेन जिम्मेदार था; उनका मानना था कि हिंदू और मुस्लिम दोनों को सांप्रदायिक सद्भाव के लिए प्रयास करना चाहिए, जिसे 'तीसरे पक्ष' यानी ब्रिटिश शासकों ने जानबूझकर नुकसान पहुंचाया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, गांधी ने यहां तक कहा कि जब तक अंग्रेज भारत नहीं छोड़ेंगे, सांप्रदायिक समस्या कभी हल नहीं होगी। चूंकि मार्च 1940 के बाद अंग्रेजों ने जानबूझकर लीग और पाकिस्तान की मांग को प्रोत्साहित किया था, इसलिए गांधीजी ने तर्क दिया कि अंग्रेजों से लड़ने और 1942 के आसपास स्वतंत्रता के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता एक पूर्व शर्त थी, और यह भी तर्क दिया कि जब तक अंग्रेज भारत नहीं छोड़ेंगे, सांप्रदायिक समस्या कभी हल नहीं होगी।

ब्रिटिश नीतियाँ और विभाजन

अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति का उद्देश्य, जानबूझकर एक समुदाय और फिर दूसरे समुदाय का पक्ष लेना, भारतीयों को अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होने से रोकना है। 1909 में मुस्लिम लीग की अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मांग को स्वीकार करना एक बड़ा विभाजनकारी कदम था जिसने 1947 में स्वतंत्रता मिलने तक भारत की राजनीतिक संस्कृति को दूषित कर दिया। कुछ लोग तर्क देते हैं कि 1906 में वायसराय के पास मुस्लिम लीग का प्रतिनिधिमंडल अपने आप में एक कमांड प्रदर्शन था और लीग की स्थापना उसके तुरंत बाद एक कुलीन समूह द्वारा अपने हितों को बढ़ावा देने की कोशिश में की गई थी। अंग्रेजों ने इसे सिखों तक भी बढ़ाया। गांधी और बी.आर. अंबेडकर ने 1932 में एक समझौते के माध्यम से दलित वर्गों और उच्च जाति के हिंदुओं के बीच विभाजन पैदा करने के ब्रिटिश प्रयास को विफल कर दिया, जिसमें दलितों को अलग निर्वाचन क्षेत्र की पेशकश की गई थी। यह तर्क अब प्रतिनिधि सरकार के संस्थागत तंत्र तक सीमित नहीं है जिसे भारत में अंग्रेजों द्वारा धीरे-धीरे पेश किया जा रहा था। इतिहासकार और मानवविज्ञानी अब तर्क देते हैं कि ब्रिटिश वर्गीकरण प्रथाओं ने जाति और धर्म के अनुसार भारतीयों के प्रतिनिधित्व के साथ-साथ आत्म-प्रतिनिधित्व को भी प्रोत्साहित किया। जनगणना में भारत में विभिन्न जातियों और समुदायों को सूचीबद्ध किया गया और उनकी गणना भी की गई।

इस प्रकार जनगणना और सर्वेक्षण की औपनिवेशिक प्रथा ने 'गणना किए गए समुदायों' के विचार को बढ़ावा दिया और देश के विभिन्न भागों में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की अवधारणा को जन्म दिया। अस्पष्ट पहचानों की जगह कठोर और विलक्षण पहचानों ने ले ली, जो अक्सर जटिल और बहुल पहचान वाले समूहों को एक को चुनने के लिए मजबूर करती थीं (कोहन, अप्पादुरई, कविराज)। ब्रिटिश ओरिएंटलिस्ट विद्वता ने भारतीय समाज की विशिष्टताओं के बारे में विचारों के विकास में भूमिका निभाई। हिंदुओं के कानूनों के संहिताकरण ने पारंपरिक समाज और संस्कृति की गतिशील प्रकृति को स्थिर कर दिया और हिंदू कानून और प्रथाओं की मुख्य रूप से पाठ्य और अभिजात वर्ग की उच्च जाति की अवधारणा को महत्व दिया। मुस्लिम कानून के संहिताकरण ने कानून की कठोर व्याख्या को भी जन्म दिया और व्याख्या की भूमिका को कम कर दिया जो मुस्लिम न्यायशास्त्र में महत्वपूर्ण थी। इतिहास लेखन ने समुदाय के विचारों को भी आकार दिया जो जल्द ही उस समय की सामान्य समझ बन गई। धार्मिक और सांस्कृतिक मतभेदों के संदर्भ में भारतीय समाज की ब्रिटिश धारणा ने धार्मिक और सांस्कृतिक संघर्ष को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया (मुशीरुल हसन, ज्ञान पांडे)।

मुस्लिम लीग और जिन्ना

भारत के विभाजन के राष्ट्रवादी विवरणों में, मोहम्मद अली जिन्ना ने विभाजन प्रक्रिया में एक प्रमुख भूमिका निभाई। अन्य राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि 1920 के बाद गांधी के नेतृत्व में बड़े पैमाने पर लामबंदी शुरू होने के बाद कांग्रेस के परिवर्तन से वे अलग-थलग पड़ गए थे। इसने जिन्ना को उदारवादी राष्ट्रवादी और संविधानवादी बना दिया, जो राष्ट्रीय राजनीति में कम प्रासंगिक हो गए, हालांकि वे कट्टरपंथी सांप्रदायिक राजनीति के विरोधी रहे। धीरे-धीरे हिंदू-मुस्लिम एकता के राजदूत शत्रुतापूर्ण हो गए और कांग्रेस के कट्टर दुश्मन बन गए। उन्होंने 1928 की नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया था, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में संख्यात्मक महत्व के आधार पर सरकार के एकात्मक स्वरूप और अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व की वकालत की गई थी। जिन्ना के चौदह बिंदुओं और पाकिस्तान की मांग के बीच एक अंतर है; एक उदार मुस्लिम के रूप में जिन्ना कांग्रेस के साथ बातचीत के खिलाफ नहीं थे। 1937 में प्रांतीय विधानसभाओं के चुनावों में मुस्लिम लीग के खराब प्रदर्शन ने उन्हें अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया। चुनावों में कांग्रेस के खराब प्रदर्शन के बाद उत्तर प्रदेश में लीग के साथ गठबंधन सरकार को कांग्रेस द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने से लीग की ओर से कड़ी प्रतिक्रिया हुई। कांग्रेस मंत्रिमंडलों की लीग द्वारा पूरी तरह निंदा की गई और पार्टी ने इस धारणा को अस्वीकार करने का निर्णय लिया कि मुसलमान 'हिंदू' कांग्रेस के प्रभुत्व में

अल्पसंख्यक के रूप में रह सकते हैं। 1940 में लीग ने भारत के उत्तर पश्चिम और पूर्व में मुस्लिम बहुसंख्यकों के आत्मनिर्णय के अधिकार की घोषणा की।

एक साझा ढांचे के भीतर अलग राज्यों की मांग, भले ही इसका मतलब अलग राष्ट्र की मांग के बिना राज्य का दर्जा हो, जैसा कि आयशा जलाल और संशोधनवादियों ने तर्क दिया, ने बाद के वर्षों में सांप्रदायिक भय और दुश्मनी को हवा दी (आयशा जलाल)। यदि जिन्ना उपमहाद्वीप को विभाजित नहीं करना चाहते थे, तो उन्होंने एक नासमझ नीति चुनी। पाकिस्तान के लिए उग्र अभियान विभिन्न सांप्रदायिक, भाषाई और सांस्कृतिक चिंताओं से जुड़ गया और इसने अपनी अलग गति पकड़ ली। भले ही जिन्ना अलग राष्ट्र राज्य नहीं बनाना चाहते थे, लेकिन सात साल तक चले उनके अभियान ने इसे संभव बना दिया। केंद्र में एक साझा सरकार बनाकर मुस्लिम बहुल प्रांतों की शक्ति का इस्तेमाल करके मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रांतों में मुसलमानों के हितों की रक्षा करने के विचार को पाकिस्तान के लिए अभियान में अनियंत्रित प्रचार द्वारा कमजोर कर दिया गया। यह तर्क दिया जा सकता है कि पाकिस्तान के काल्पनिक आदर्श के बजाय एक ढीले संघ के भीतर प्रांतों के अधिकारों पर जोर देकर मुस्लिम हितों की बेहतर सेवा की जा सकती थी। किसी भी मामले में जिन्ना की रणनीति और मुस्लिम लीग के प्रचार ने उनके छिपे हुए उद्देश्यों के बजाय भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम को प्रभावित किया और भारत के विभाजन का कारण बना।

कांग्रेस और विभाजन

प्रारंभिक राष्ट्रवादी विवरणों में विभाजन के लिए केवल ब्रिटिश और मुस्लिम लीग को दोषी ठहराया गया था। कांग्रेस ने भारतीय समाज के सभी वर्गों को अपने छत्र के नीचे लाने की कोशिश की, लेकिन पृथक निर्वाचिका, फूट डालो और राज करो की ब्रिटिश नीति, जिन्ना की हठधर्मिता और लीग पर सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी पकड़ ने उपमहाद्वीप के विभाजन को जन्म दिया। कांग्रेस मुस्लिम जनता तक पहुँचने में असमर्थ थी और इसलिए अनिच्छा से उसने बहुसंख्यक भारतीय मुसलमानों की अपने लिए एक राष्ट्र बनाने की इच्छा को स्वीकार कर लिया। भारतीय इतिहास में दो पहलुओं द्वारा इस विवरण को चुनौती दी गई है। बिपन चंद्र का तर्क है कि कांग्रेस में हिंदू रंग था और लाला लाजपत राय और मदन मोहन मालवीय जैसे हिंदू उदार सांप्रदायिकतावादी कांग्रेस पार्टी की समावेशी राष्ट्रवादी साख के बारे में संदेह पैदा करने में सक्षम थे। हालाँकि, उनका मानना है कि लीग द्वारा चरम सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया था और कांग्रेस इस समस्या को संभालने में विफल रही (बिपन चंद्र)। यह हिंदू सांप्रदायिकतावादियों के दबाव और अपर्याप्त जन लामबंदी दोनों के कारण था। दूसरा तर्क यह है कि देश के विभाजन के लिए कांग्रेस काफी हद तक जिम्मेदार है।

कांग्रेस का भारत में मुस्लिम समुदायों के प्रति पर्याप्त समावेशी दृष्टिकोण नहीं था। कांग्रेस पार्टी की संस्कृति और विचारधारा बहुसंख्यकवादी थी - यह विश्वास कि बहुसंख्यक पार्टी का दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए। यह सार्वजनिक जीवन पर हावी होना चाहती थी क्योंकि यह सबसे बड़ी पार्टी थी। दूसरा तर्क यह था कि कांग्रेस के समावेशी राष्ट्रवाद में भी मुस्लिम पहचान को नकारना शामिल था और मुस्लिम होने के किसी भी संकेत को अलगाववादी या सांप्रदायिक माना जाता था। आयशा जलाल कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद और मुस्लिम सांप्रदायिकता के बीच द्विआधारी विरोध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। हालाँकि, उनकी पुस्तक सेल्फ एंड सॉवरिन्टी में, बहुसंख्यकवाद की राजनीतिक और धार्मिक धारणा के बीच का अंतर अक्सर धुंधला हो जाता है और व्यक्तियों और राजनीतिक माँगों या आंदोलनों को स्वीकार्य रूप से सामुदायिक या अस्वीकार्य रूप से सांप्रदायिक के रूप में चिह्नित करने का आधार अक्सर अस्पष्ट होता है। कांग्रेस ऐसी पार्टी नहीं थी जो हिंदू बहुसंख्यक शासन स्थापित करना चाहती थी और अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षा उपायों की नीति, मौलिक अधिकारों और संघवाद पर जोर धार्मिक बहुसंख्यकवाद के खतरों का ख्याल रख सकता था।

गांधी और विभाजन

भारत का विभाजन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के लिए एक गंभीर झटका था, जिन्होंने इसे तब तक टालने की कोशिश की जब तक कि एकता को बनाए रखने की शर्तें उन्हें अस्वीकार्य नहीं लगीं। विभाजन पर सबसे कड़ी प्रतिक्रिया गांधी की ओर से आई, जिन्होंने दशकों तक सांप्रदायिक सद्भाव के लिए काम किया था। उन्होंने खलीफा के साथ किए गए व्यवहार और ओटोमन साम्राज्य के विघटन के बारे में शिकायतों को अप्रैल 1919 में अमृतसर में जलियांवाला बाग हत्याकांड और पंजाब में मार्शल लॉ लागू होने के बाद राष्ट्रवादी आक्रोश से जोड़कर बड़ी संख्या में भारतीय मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया था।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन ने मुस्लिम भागीदारी को उस पैमाने पर सामने लाया, जिसे कांग्रेस इसके बाद कभी हासिल नहीं कर पाई। 1922 की शुरुआत में आंदोलन के वापस लेने के बाद 1922 और 1926 के बीच कोहाट से लेकर कलकत्ता तक उत्तर भारत के कई हिस्सों में सांप्रदायिक संघर्ष शुरू हो गए। गांधी के आलोचकों का मानना है कि खिलाफत जैसे धार्मिक मुद्दे का इस्तेमाल खतरनाक था क्योंकि इससे भारतीय मुसलमानों में अतिरिक्त-क्षेत्रीय वफ़ादारी और पैन-इस्लामिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला (बी.आर. नंदा)। यह भी तर्क दिया गया है कि अली भाइयों के साथ गांधी के सहयोग से भारत के भीतर उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भारत के भीतर मुस्लिम जनसमूह को संगठित किया गया (गेल मिनाल्ट)। धर्मनिरपेक्ष और मार्क्सवादी इतिहासकार राजनीति में धर्म के इस्तेमाल को 'दोधारी हथियार' मानते हैं और इसलिए इस रणनीति को खतरनाक परिणामों से भरा हुआ मानते हैं (बिपन चंद्र, सुमित सरकार)।

कैबिनेट मिशन योजना और एक मजबूत राज्य

'सोल स्पोक्समैन' में आयशा जलाल ने सुझाव दिया था कि 1946 की कैबिनेट मिशन योजना वह थी जो जिन्ना की वास्तविक इच्छा के सबसे करीब थी, लेकिन कांग्रेस नेतृत्व के पास एक मजबूत केंद्र की प्राथमिकता के आधार पर अन्य योजनाएँ थीं। स्व और संप्रभुता में, कांग्रेस से मुसलमानों के अलगाव को समझने के लिए सामुदायिक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है, साथ ही राष्ट्रवाद की एकात्मक या एकल अवधारणाओं द्वारा राष्ट्रवाद के नाम पर नियंत्रित या अवैध करने की कोशिश की गई कई पहचानों को भी समझने के लिए। यह उजागर करना महत्वपूर्ण है कि अगर पाकिस्तान की मांग नहीं होती, तो चाहे विभिन्न समूहों के लिए मांग का क्या मतलब हो, राजनीति के संघीय चरित्र को बनाए रखना आसान होता। यहां तक कि अगर पंजाब और बंगाल के मुसलमान भी संघीय ढांचे के भीतर पर्याप्त स्वायत्तता की मांग करते, तो भी यह कम सांप्रदायिक आधार पर होता। यदि संघ के भीतर प्रांतीय स्वायत्तता की मांग लीग द्वारा की गई होती, तो मुस्लिम सामुदायिक पहचानों के साथ-साथ अन्य पहचानों की बहुलता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि

भारत के विभाजन की चर्चा को कुछ शीर्ष नेताओं के इरादों या निर्णयों तक सीमित नहीं किया जा सकता, चाहे औपनिवेशिक शासन के अंतिम वर्षों में उनकी भूमिका कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न रही हो। इसके अलावा, इतिहास में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और विभाजन को जन्म देने वाली अडिग ताकतों की धारणा भी अस्वीकार्य है। भारतीय कम्युनिस्टों का तर्क कि भारत में कई राष्ट्र हैं और पाकिस्तान की मांग एक राष्ट्रीयता की मांग थी, तार्किक रूप से सुसंगत है, लेकिन यह हमें यह नहीं बताता कि औपनिवेशिक शासन के अंतिम दशक के दौरान यह कैसे और क्यों उभरा। फिर भी औपनिवेशिक शासन के अंतिम कुछ वर्षों के दौरान पाकिस्तान के एक अलग राज्य या पंजाब और बंगाल के विभाजन के लिए बढ़ते समर्थन के बारे में एक मध्यम स्तर का सूत्रीकरण है। पाकिस्तान की अपूर्ण मांग ने कवियों और प्रचारकों को उकसाया जिन्होंने लोकप्रिय मनोदशा को प्रभावित किया और सांप्रदायिक तनाव और चिंताओं को बढ़ावा दिया। मुशीरुल हसन जैसे कई विद्वान, जो भारतीय राष्ट्रवाद और मुस्लिम सांप्रदायिकता और अलगाववाद के बीच द्विआधारी विरोध को स्वीकार नहीं करते, मानते हैं कि लीग के प्रचार का समाज के कई वर्गों पर

गहरा प्रभाव पड़ा (मुशीरुल हसन)। इसने न केवल पंजाब और बंगाल जैसे मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में एक अलग राज्य के लिए समर्थन पैदा करने में मदद की, बल्कि इन क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों के बीच चिंताओं को भी बढ़ावा दिया।

भारत का विभाजन - कारण और परिणाम

1947 में भारत का विभाजन आधुनिक दक्षिण एशियाई इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण और दुखद घटनाओं में से एक है। इसने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंत को चिह्नित किया और दो अलग-अलग राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान का निर्माण किया। इस विभाजन के परिणाम बहुत गंभीर थे, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर जनसंख्या विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा और स्थायी राजनीतिक और सामाजिक चुनौतियाँ हुईं। यह अध्याय विभाजन के पीछे के प्रमुख कारणों और इसके दूरगामी परिणामों की पड़ताल करता है।

औपनिवेशिक विरासत और फूट डालो और राज करो की नीति

भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने विभाजन की स्थिति पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश प्रशासन ने "फूट डालो और राज करो" की रणनीति अपनाई, जानबूझकर हिंदू और मुस्लिम आबादी के साथ-साथ अन्य जातीय और सामाजिक समूहों के बीच विभाजन पैदा किया। इस नीति का उद्देश्य औपनिवेशिक शासन के खिलाफ़ एकजुट प्रतिरोध को रोककर ब्रिटिश नियंत्रण को बनाए रखना था। धार्मिक मतभेदों को बढ़ावा देकर और अलग-अलग राजनीतिक संगठनों को प्रोत्साहित करके, अंग्रेजों ने भारतीय समाज के भीतर विभाजन की भावना को मजबूत करने में मदद की।

धार्मिक राष्ट्रवाद का उदय

विभाजन की जड़ें 20वीं सदी की शुरुआत में धार्मिक राष्ट्रवाद के उदय में देखी जा सकती हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो शुरू में स्वतंत्रता के लिए एकजुट संघर्ष पर केंद्रित थी, को चुनौतियों का सामना करना पड़ा क्योंकि मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने एक अलग मुस्लिम राज्य के निर्माण के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। मुसलमानों के लिए एक अलग मातृभूमि की मांग, जिसे "पाकिस्तान" कहा जाता है, इस विचार पर आधारित थी कि मुसलमानों और हिंदुओं की अलग-अलग धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान थी जो एकीकृत भारत के भीतर सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती थी।

राजनीतिक वार्ता की विफलता

हालाँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग दोनों ने शुरू में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता की मांग की थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक संरचना के लिए उनके दृष्टिकोण असंगत थे। जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी जैसी हस्तियों के नेतृत्व में कांग्रेस ने एक एकजुट, धर्मनिरपेक्ष भारत की कल्पना की, जहाँ सभी धार्मिक समुदाय एक लोकतांत्रिक ढांचे के तहत सह-अस्तित्व में रहेंगे। हालाँकि, जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग अपने विश्वास में दृढ़ थी कि मुसलमान हिंदू-बहुल भारत में नहीं रह सकते, और मुस्लिम-बहुल राज्य के रूप में पाकिस्तान के निर्माण की वकालत की। सांप्रदायिक तनाव बढ़ने के कारण राजनीतिक समझौता करने के प्रयास विफल हो गए। अलग राज्य की मांग के लिए मुस्लिम लीग द्वारा बुलाए गए 1946 के प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच व्यापक हिंसा को जन्म दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध की भूमिका

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि ने भी विभाजन की ओर ले जाने वाली घटनाओं को प्रभावित किया। युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के कमज़ोर होने और कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों की ओर से स्वतंत्रता के लिए बढ़ते दबाव ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत में ब्रिटिश नियंत्रण अब टिकाऊ नहीं रह गया था। युद्ध से थकी हुई ब्रिटिश सरकार जल्द से जल्द भारत से बाहर निकलना चाहती थी। निर्णय लेने में इस जल्दबाजी ने विभाजन की प्रक्रिया को और तेज़ और अव्यवस्थित बना दिया।

विभाजन योजना और भारत और पाकिस्तान का निर्माण

1947 में, अंग्रेजों ने भारत को स्वतंत्रता देने का फैसला किया, लेकिन ऐसा करते हुए, वे धार्मिक आधार पर उपमहाद्वीप के विभाजन पर सहमत हो गए। माउंटबेटन योजना के रूप में जानी जाने वाली इस योजना के तहत दो राष्ट्रों का निर्माण हुआ - भारत, जिसमें हिंदू बहुसंख्यक थे, और पाकिस्तान, जिसमें मुस्लिम बहुसंख्यक थे। विभाजन इस आधार पर किया गया था कि मुस्लिम और हिंदू एक राष्ट्र में शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व में नहीं रह सकते। विभाजन के साथ ही सत्ता का जल्दबाजी में और खराब तरीके से नियोजित हस्तांतरण हुआ, जिसमें सीमाओं को जल्दबाजी में और जमीन पर धार्मिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं की जटिलताओं को ध्यान में रखे बिना खींचा गया। पंजाब और बंगाल के प्रांत, जो भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित थे, ने सबसे बड़े पैमाने पर हिंसा और पलायन देखा क्योंकि लाखों लोग विस्थापित हुए।

विभाजन के बाद की स्थिति

विभाजन के तत्काल परिणाम विनाशकारी थे। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हिंसा भड़क उठी, दोनों पक्षों में व्यापक नरसंहार, बलात्कार और अत्याचार हुए। इसके बाद बड़े पैमाने पर पलायन हुआ, जिसके कारण लगभग 10 से 15 मिलियन लोग विस्थापित हुए, जिससे इतिहास में सबसे बड़ा शरणार्थी संकट पैदा हो गया। विभाजन ने भारत और पाकिस्तान के बीच अविश्वास और शत्रुता की विरासत भी छोड़ी, जो दशकों से कायम है और इस क्षेत्र के भू-राजनीतिक परिदृश्य को आकार दे रहा है।

एकीकरण के प्रयास

जब स्वतंत्रता की दहलीज पर खड़ा देश अपनी एकता के भूगोल को खोजने के लिए संघर्ष कर रहा था, तब एक असाधारण व्यक्ति था जिसने राष्ट्र की इमारत को आकार देने का विशाल कार्य अपने कंधों पर लिया। अपनी अदम्य भावना और अथक प्रयासों से, उन्होंने सैकड़ों उल्लेखनीय रूप से विविध राज्यों को एकीकृत करके आधुनिक भारत राष्ट्र–राज्य का निर्माण संभव बनाया। इस दूरदर्शी का नाम है– 'सरदार' वल्लभभाई पटेल। सरदार पटेल ने रियासतों के विलय को सुनिश्चित करने और उन्हें भारत संघ में एकीकृत करने के लिए कदम उठाया। 25 जून 1947 को सरदार पटेल के अधीन राज्य विभाग का गठन किया गया। वीपी मेनन को इसका सचिव नियुक्त किया गया। इन दोनों व्यक्तियों ने एक ऐसी मजबूत टीम बनाई जिसकी चतुराई और कूटनीति ने स्पष्ट रूप से दुर्गम बाधाओं को पार करना संभव बना दिया। 15 अगस्त 1947 को सरदार पटेल ने पहले उप प्रधान मंत्री के साथ–साथ स्वतंत्र भारत के पहले गृह मंत्री के रूप में शपथ ली। उन्होंने सूचना और प्रसारण मंत्रालय का कार्यभार भी संभाला।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के पारित होने के साथ, स्वतंत्रता का लंबे समय से संजोया गया सपना आखिरकार दरवाजे पर आ गया। हालाँकि, आगे बहुत बड़ी बाधाएँ थीं। स्वतंत्रता के समय, भारत में ब्रिटिश भारत और रियासतें शामिल थीं। 17 ब्रिटिश भारतीय प्रांत थे, और रियासतें– जो देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग दो–पाँचवाँ हिस्सा थीं– की संख्या 560 से अधिक थी। जबकि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने ब्रिटिश भारत का नियंत्रण भारतीय सरकार को सौंप दिया, लेकिन रियासतों के शासकों को यह तय करने का विकल्प दिया गया कि वे भारत या पाकिस्तान में से किसी में भी शामिल होना चाहते हैं या नहीं। एकीकरण की इस प्रक्रिया में चार चरण अपनाये गये थे :–

1. लोकतांत्रिकरण – इसके अन्तर्गत राजषाही के अन्तर्गत कार्य कर रहे राज्यों में लोकतांत्रिकरण प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी एवं जनता को एक बेहतर शासन का आश्वासन दिया गया।
2. केन्द्रीकरण – इसके अन्तर्गत सभी राज्यों को एक ही केन्द्र सरकार के अधीन कार्य करने की व्यवस्था स्थापित की गई ताकि सभी पर समान कानून लागू हो सके।
3. संविधानिकरण – इस प्रक्रिया में पूरे भारत में एक ही संविधान को लागू करते हुये सभी राज्यों को इसके अधीन कार्य किये जाने की प्रेरणा प्रेषित की गई।
4. पुर्नगठन – इस प्रक्रिया के अन्तर्गत राज्यों का पुर्नगठन समान संस्कृति, भाषा व अन्य समानताओं को देखते हुये किया गया।

निष्कर्ष

गांधी ने बहादुरी से संघर्ष किया, लेकिन भारत की एकता को बनाए नहीं रख सके। यह ऐसा काम नहीं था जिसे उनके जैसे महान नेता अकेले संभाल सकते थे। शक्तिशाली आर्थिक और राजनीतिक ताकतें खेल रही थीं और अंततः जीत गईं। गांधी को नहीं पता था कि देश के अंतिम विभाजन से पहले जिन संवैधानिक समस्याओं और विकल्पों पर चर्चा की गई थी, उनसे कैसे निपटा जाए; वह इतने बूढ़े और हाशिए पर नहीं थे कि अपने विचार पेश कर सकें। इसलिए उन्होंने 1946-47 में सांप्रदायिक गतिरोध के संवैधानिक समाधान पर अपने विचार जोरदार तरीके से पेश नहीं किए, हालांकि 'महासागरीय चक्र' के विचार से हमें भारत के लिए उनके दृष्टिकोण की झलक मिलती है। संभवतः उन्होंने दंगा प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करके सांप्रदायिकता से लड़ने में खुद को डुबो दिया क्योंकि यह ऐसा काम था जो वह दूसरों की मदद के बिना कर सकते थे। अहिंसा और विकेंद्रीकृत सरकार में विश्वास रखने वाला सत्याग्रही इस बारे में विस्तृत सलाह देने में असमर्थ था कि राष्ट्रवाद और आधुनिकीकरण के लिए राष्ट्रवादी परियोजनाओं की प्रतिस्पर्धी धारणाओं से सबसे अच्छा कैसे निपटा जा सकता है। वह विभाजन से नाखुश थे लेकिन वह उस पार्टी से लड़ने के लिए तैयार नहीं थे जिसका नेतृत्व उन्होंने लगभग तीन दशकों तक किया था। भारत का विभाजन कई कारकों का परिणाम था, जिनके बारे में अब तक चर्चा हो चुकी है। कोई भी एक व्यक्ति इसे न तो लाया और न ही इसे टाल सकता था। यह बात गांधी के लिए भी सच है।

संदर्भ

1. रघुरामराजू, ए., (संपादक), डिबेटिंग गांधी: ए रीडर, ओयूपी, दिल्ली, 2006।
2. अहमद, ऐजाज, लिनिएजेस ऑफ द प्रेजेंट: आइडियोलॉजी एंड पॉलिटिक्स इन कंटेम्पररी साउथ एशिया, लंदन, वर्सो, 1995
3. अहमद, अकबर, जिन्ना, पाकिस्तान और इस्लामिक आइडेंटिटी: द सर्च फॉर सलादीन, रूटलेज, लंदन, 1997।
4. सिंह, अनीता इंदर, द ओरिजिन्स ऑफ द पार्टिशन ऑफ इंडिया, 1936-1947, ओयूपी, दिल्ली, 1987
5. परेल, एंथनी, गांधीज फिलॉसफी एंड द क्वेस्ट फॉर हार्मनी, कैम्ब्रिज, 2007।
6. अर्जुन अप्पादुरई, 'नंबर इन द कोलोनियल इमेजिनेशन', कैरोल ब्रेकेनरिज और पीटर वीर (संपादक), ओरिएंटलिज्म एंड द पोस्टकोलोनियल प्रेडिकेमेंट, फिलाडेल्फिया, 1993।
7. रॉय, असीम, (संपादक), इस्लाम इन हिस्ट्री एंड पॉलिटिक्स: पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम साउथ एशिया, ओयूपी, दिल्ली, 2006।
8. जलाल, आयशा, द सोल स्पोक्समैन, जिन्ना, मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की मांग, कैम्ब्रिज, 1985
9. जलाल, आयशा, 'नेशन, रीजन एंड रिलीजन: पंजाब्स रोल इन द पार्टिशन ऑफ इंडिया,' इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 33, संख्या 32, 8-14 अगस्त, 1998, पृष्ठ 2183-2190।
10. जलाल, आयशा, सेल्फ एंड सॉवरिन्टी: इंडिविजुअल एंड कम्युनिटी इन साउथ एशियन इस्लाम सिंस 1850, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली,